डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

कहानी

दर्शक

प्रियंवद

हम एक जादू के अन्दर थे उसी तरह, जैसे प्रेम, स्वप्न या दुख के अन्दर होते हैं।

इस तरह हम पहली बार थे हालांकि, दूसरी सारी चीजें वैसी ही थीं जैसे कई बार पहले भी रहती थीं, छोटा सा लॉन अमरूद का पेड सुबह दो बजे की चांदनी अक्टूबर के आखिरी दिन ओस सन्नाटा चहारदीवारी की मुंडेर पर ऊंघती बिल्ली। ये सब हमेशा ही इस जादू का हिस्सा होते थे या कि उसे रचते थे, पर हम इसके अन्दर इस तरह पहले कभी नहीं होते थे।आज थे।

" मैं एक बार मां को देख आऊं? " वह बैंच से उठ गई। शराब का गिलास उसने बेंच के एक कोने पर रख दिया।
" तुम्हें कुछ चाहिये?"
" नहीं।" मैं ने सिर हिलाया। पहला कदम बढाने पर वह एक क्षण के लिये लडख़डाई फिर पांव संभाल कर रखती हुई अन्दर चली गई।

मैं चुपचाप उसे जाते हुए देखता रहा। धीरे धीरे चलती हुई वह बाहर वाले कमरे के अंधेरे में गुम हो गई। मैं ने पहली बार महसूस किया कि इस तरह अचानक उठ जाने से वह अपने पीछे कुछ छोड ग़ई है। बहुत समीप का खालीपन। बैंच का एक रिक्त हिस्सा।

मैंने फिर कमरे की तरफ देखा। उसके भी अन्दर वाले कमरे का पर्दा हिला। वह फिर आती हुई बाहर वाले कमरे के अंधेरे में दिखी उसे और गाढा करती हुई। धीरे - धीरे बाहर आई वह। मैं उसे देख रहा था। उसकी काया में एक विलक्षण आलोक था। स्निग्ध तरल उसके बाल खुले थे। उसकी छोटी देह छोटे अंग उस आलोक में थे। पंजे हथेलियां गर्दन चेहरा।

वह बैंच पर अपनी उस जगह पर बैठ गई। गिलास उसने फिर हाथ में ले लिया। कुछ क्षण उसने गहरी सांस ली फिर मुझे देखकर मुस्कुराई।
" देर हो गई?"
" नहीं, पर अन्दर क्या था? इतनी रात को क्या हो सकता है, सिवाय सोने के।"
" मैं नींद की गोली रख आई थी वही देखने गई थी कि खाई कि नहीं।"
" फिर?"
" खा ली।"

मैं चुप हो गया। मैं ने उसे देखा। उसके चेहरे की खाल खिंची हुई थी तबले के चमडे क़ी तरह। ऐसा सिर्फ शराब पीने के बाद होता था। खाल के इस तरह खिंचने पर उसकी लाली,उसकी बनावट, उसकी नसें और पूरी खाल का सांस लेना ज्यादा साफ और चमकदार हो जाता था।

वह एक बार और कांपी। उसके पंजे गीली घास पर थे। ओस गिरने से ठण्ड बढ रही थी। उसने पंजे उठा कर बेंच पर रख लिये।
"ढक लो " मैं ने उसे अपनी चादर का एक कोना पकडा दिया " या अन्दर चलें? "
वह कुछ नहीं बोली। चादर के उस कोने में उसने अपने पंजे छुपा लिये। वह बेंच पर थोडा घूम आई। अब उसका नन्हा चेहरा पूरी तरह मेरी तरफ था। घुटने मोडे हुए वह मेरे सामने बैठी थी। हम कुछ देर चुप रहे।
" बताओ जिन्दगी के फैसले किस तरह करने चाहिये?" उसने पूछा। उसकी आवाज धीमी थी।
" कैसे फैसले?" मैं ने पूछा।
" ऐसे जिन पर पूरा जीवन टिका हो या कि जिनसे जीवन का पूरी तरह बदल जाना तय हो।"

मैं चुप रहा। मैं ने सर घुमाकर देखा। मुंडेर पर बिल्ली ने अंगडाई ली। दूर किसी पेड पर एक परिन्दा चीखा। मैंने फिर उसे देखा। वह मुझे देख रही थी। मैं ने एक उंगली चादर के नीचे छुपे उसके पंजे पर रखी। उसकी उभरी नस मैं ने अपनी उंगली पर महसूस की। मैं ने उस उभरी नस पर धीमे - धीमे उंगली फेरी। उसकी आंखों में एक उदासी उतर आई। वह उस नस के छूने से नहीं बल्कि उस समग्र आलोक से उतर रही थी जो उसकी काया में था।

" ऐसे संशय भरे फैसले कभी आत्मा से नहीं लेने चाहिये। इसमें उसे सिर्फ दर्शक रहने दो।"
" क्यों?" उसने मुझे देखा।
" दो कारण हैं। पहला तो यह कि आत्मा को कभी ऐसे फैसलों की जरूरत नहीं पडती क्योंकि उसे कभी संशय नहीं होता। जीवन की दूसरी चीजों को यह जरूरत होती है। संशय बुध्दि को होता है, चेतना को होता है, अर्जित अनुभवों को होता होता है। जहां कहीं भी संशय है, वहां आत्मा नहीं होगी क्योंकि वह उसका नैसर्गिक सत्य नहीं है। या यूं कह लो कि जिससे आत्मा नहीं जुडती वहां संशय होता है। वास्तव में वह तुम्हारे अन्दर रहने वाला सत्य नहीं है। तुम उसे चुन रहे हो। दूसरा कारण यह है कि कभी ऐसे फैसले गलत हुए भी तो वह दुख नहीं होगा जो पूरे जीवन को एक गहरी अंधेरी गुफा में ढकेल देता है। आत्मा तब भी मुक्त होगीउस गलत निर्णयों के परिणामों में सिर्फ साक्षी होगी दर्शक होगी। निर्लिप्त निरपेक्ष नाटक के पात्रों पर ताली बजाती हुई।"

वह कुछ नहीं बोली। उसने अपने पंजे की उंगलियां हिलाईं। अपनी नस पर रेंगती हुई मेरी उंगली उसने अपने पंजों की उंगलियों के बीच दबा ली। उसकी आंखों में अब एक गीलापन उतर आया। वह अब जिन्दा मछलियों की तरह लग रही थी। उसकी उंगलियों की पकड बढ रही थी जैसे वह मेरी उंगली तोड देगी। धीरे - धीरे उसके होंठ फैले। मैं ने पहली बार देखा कि होंठ भी उदास होते हैं।

मैं ने अपनी उंगली खींच ली। मेरा गिलास खाली हो गया था। उसे मैं ने नीचे घास पर रख दिया।
" मैं चलूंगा।" मैं ने कहा
" अभी नहींरुको।" वह थोडा आगे झुक गयी। कुछ क्षण मैं बैठा रहा। वह मुझे देख रही थी।
" कब तक? "
" जब तक बिल्ली मुंडेर पर है।"

मैं ने मुंडेर की तरफ देखा। बिल्ली उस पर चिपकी थी। गहरी नींद में थी शायद उसे सुबह तक वहीं होना है।
मैं ने घास पर रखा गिलास उठा लिया। उसमें थोडी - सी शराब बनाई। उसने सर झुका कर अपने गिलास से घूंट भरा।
" तो आत्मा को दर्शक होना चाहिये जीवन के नाटक का दर्शक।" उसने कहा। उसकी आवाज अब भारी हो गयी थी। ठण्ड से या शराब से या फिर अन्दर की तरल उदासी से।
" हां जब वैसे निर्णय करना हो।"
" क्या यह संभव है?"
" हां।"
" आसान है? "
" हां।"
" नहीं इतना गणित जीवन में नहीं चलता। दृष्टि ऐसा हंस नहीं होती। तुम कर पाए ऐसा कभी?"
" क्या?"
" वही ऐसा कोई निर्णय जिस पर तुम्हारा पूरा जीवन टिका हो बिना आत्मा की लिप्तता के उसे सिर्फ दर्शक बनाकर।"

मैं ने सुना और उसी क्षण, बिलकुल उसी क्षण मेरे अन्दर एक बिंदु चमका। उद्भासित होता हुआ शिराओं में फैलता गहरा विचार बन कर। अदम्य लालसा बनकर। मैं हैरान था या कि संज्ञाशून्य। जिसे हम अपना जीवन कहते हैं, जिसे अदृश्य स्थितियों से निर्मित, पर एक अत्यन्त परिचत शरण मानते हैं, वह वास्तव में कितना अपरिचित, रहस्यमय, अविश्वसनीय होता है।

"बताओ? " उसने फिर पूछा।

वह मुझे देख रही थी। मैं ने उसे ध्यान से देखा इस बार इस बार सिफ एक देह की तरह। उस चांदनी में उस जादू में उतरी हुई एक देह। कोमल लघु गीली सफेदी में आलोकित।उसके हाथों के सुनहरे रोएं उसके पंजों की नन्हीं उंगलियां उसकी सफेद गर्दन उसकी तबले - सी कसी खाल और उस पर उतरा हुआ कामुक गंध का एक जंगल।

मुझे पता था कि वह पिछले चार सालों से मेरे विवाह के प्रस्ताव की प्रतीक्षा कर रही है। मूक शांत अव्यक्त। हमारे सारे परिचित विस्मित थे कि हर तरह से योग्य और समर्पित दिखती हुई, उस ऐसी लडक़ी के साथ मैं ने अब तक ऐसा क्यों नहीं किया। मुझे भी नहीं पता था कि मैं ने क्यों नहीं किया। मुझे यह भी पता था कि वह बहुत आंतरिकता में गहनता से मुझसे प्रेम करती है। इतना गहन कि वह अन्ततः मौन हो गया था। किसी भी प्रतिक्रिया या अपेक्षा से रहित। मैं इसी तरह कभी - कभी उसके साथ बैठता था। मैं ने सिर्फ एक बार उसकी हथेली छुई थी। उसका भविष्य पढने के लिये। मुझे उसकी खाल का वह स्पर्श हमेशा याद रहा। उसकी आंखों में कौंधा उस एक क्षण का सुख या स्वप्न भी।

उस क्षण, बिलकुल उसी क्षण वही स्पर्श मेरे अन्दर एक परिन्दे की तरह फडफ़डाता उछला था। उसकी पूरी देह मेरे सामने थी। प्रस्तुत तत्परआश्वस्त करती हुई। उसकी देह का विचार उसकी गहरी लालसा उसी जादू का असर थी। उसने पूछा था कि मेरा वह निर्णय, जिस पर मेरा जीवन टिका हो और जिसमें आत्मा सिर्फ साक्षी रहे नाटक का दर्शक बन कर ताली बजाये, मैं ने कब लिया? वह यही था। उसकी देह छूने का अर्थ था उसके सारे स्वप्नों सारी

आकांक्षाओं को पंख देना। एक नए सम्बन्ध को जन्म देना। उसकी अपेक्षाएं, उसके अधिकार, उसके अस्तित्व की सततता को, उसकी कल्पनाओं को गतिशील करना था। एक अव्यक्त भ्रूण को जीवन का प्रकाश देना था। संभव था इस देह भोग के बाद हमारे बीच सिर्फ अपेक्षाएं शेष रह जायें संभव था सिर्फ निर्मम और सम्वेदनहीन और सम्वेदनहीन प्रतिक्रियाएं जीवित रहें संभव था कि यह सम्बन्ध कुरूप और बेहूदा हो जाये।

यह एक कठोर निर्णय था। हम दोनों के जीवन में एक ऐसा रन्ध्र पैदा करना था, जिसके पार एक दूसरी दुनिया थी और वह दुनिया मेरा अभीष्ट नहीं थी। मेरी वांछा नहीं थी। मेरा स्वभाव, मेरा सत्य नहीं थी। मेरी आत्मा निश्चित रूप से इसके लिये तैयार नहीं थी। मेरी लालसा, मेरे संशय, मेरी उत्तेजना और मेरी आत्मा की निर्लिप्तता? यही द्वन्द्व, यही द्वैत था जिसका प्रश्न वह मुझसे कर रही थी जो मैं ने उसे अभी एक दर्शन की तरह दिया था।

" तो? " उसने पूछा।
" हां, मैं ने ऐसा निर्णय लिया है" मैं ने कहा। मेरा स्वर धीमा था। बहुत धीमा। उसमें मेरी आत्मा की शक्ति नहीं थी। सिर्फ देह की उत्तेजक फुसफुसाहट थी।
" क्या?"
" फिर कभी" मैं ने अपना हाथ आगे बढाया। निर्द्वन्द्व, निसंकोच वह मुस्कुराई। अपनी नन्ही सी हथेली उसने मेरे पंजे में रख दी। मैं ने उसे दबाया। उसने मेरी आंखों में देखा। मेरे पंजे में उसकी हथेली एक चिरौटे की तरह फडफ़डाई। उसके चेहरे पर धीरे - धीरे एक सुख उतरने लगा। उसके चेहरे पर कसी खाल ढीली पडने लगी।

मुझे पता था कि मैं पूरी तरह आमंत्रित हूं। मैं ने धीरे से उसे अपनी तरफ खींचा।
"रुको।" उसने कहा। वह घास पर खडी हुई। अपने गिलास की बची हुई शराब उसने एक सांस में पी ली। गिलास घास पर लुढक़ा कर वह मेरे पास बैठ गई।

" बिल्ली उठने वाली है।" उसने मुंडेर की तरफ इशारा किया और मेरे सीने में दुबक गई। मैं ने उसके कान पर से बालों को हटा कर उस पर अपनी जीभ फेरी, " यह याद रखना इसके पहले भी हमारे बीच कुछ नहीं था इसके बाद भी कुछ नहीं होगा। बस यही, इतनी देर का सत्य है यहजितनी देर हम इसे जियेंगे। बिलकुल इतना ही। जन्मा और मर गया। "मुझे अपनी आवाज पहली बार कमजोर, निरीह, कांपती हुई लगी। मुझे यह भी लगा कि जीवन के जिस अंश में आत्मा नहीं होती, वह जीवन की सिर्फ छाया होती है छद्म होता है।

उसने अपना सर ऊपर उठाया। उसकी आंखें मेरी आखों के पास थीं। बहुत पास। मुझे उनका कत्थईपन दिख रहा था। चांदनी उसके चेहरे पर दिख रही थी। होंठों पर चिपका गीलापन भी। कांपती ओस उसकी फूली नसों पर थी। उसने कुछ क्षण मुझे देखा। उस दृष्टि में एक महाख्यान था। सृष्टि के सारे रहस्य थे। जीवन के सारे गुह्य और सूक्ष्मतम अणु थे। उस दृष्टि में एक क्षण के लिये पानी उतरा। उसमें थरथराहट थी वैसे ही जैसी शाख से टूटकर गिरती पत्ती में होती है। दृष्टि का वह पानी फिर उड ग़या। वहां प्रेम उतर आया। मद की शिथिलता और कामना की चमक से से संतृप्त। अलग से दिखता हुआ।

वह मुस्कुराई। मैने जो कहा यह उसकी स्वीकृति थी। मुझे पता था यही होगा। मुझे मालूम था मेरा कोई भी सुख उसे स्वीकार होगा।

उसने मेरे सीने में सिर गडा दिया।
" यहीं " वह धीरे फसफुसाई " इसी जादू में।"

मैं ने इस बार उसके होंठों के गीलेपन पर जीभ फेरी। मुझसे अलग होकर वह बैंच पर लेट गई। उस पर झुकने से पहले मैं ने मुंडेर की तरफ देखा। वहां अब बिल्ली नहीं थी। वहां मेरी आत्मा बैठी थी अब। दर्शक की तरह ताली बजाती हुई। मैंने उसकी बंद होती आंखों में देखा।
उसकी आत्मा वहीं थी।

इसके सात महीने बाद उसने शादी कर ली।

उस रात सब कुछ जल्दी खत्म हो गया था। मैं अनुभवहीन था। मुझे स्त्रीदेह के सूत्र, उसका तन्त्र, उसकी लय, उसके आरोह - अवरोह का ज्ञान नहीं था। उसने मुझे बर्दाश्त ही किया था बस। जाने से पहले मैं ने एक बार फिर अपने भय से मुक्ति चाही थी।

" जितनी देर भी थे, हम एक गुफा में थे देह की यह गुफा हमारा सच नहीं है उसके बाहर की दुनिया, इसकी हवा रोशनी सच है।"
उसने मुझे चुपचाप देखा था एक बार, फिर झुककर घास पर उलटे दोनों गिलास उठा लिये थे।
" जाओ अब" उसने धीरे से कहा था। मैं चला आया था।

उसके बाद मैं दो बार फिर उससे मिला। हमारे बीच उस रात की कोई बात नहीं हुई।

उसी के बाद उसने शादी करने का फैसला कर लिया। मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसे एक पुरुष की जरूरत थी। उसकी बीमार मां को भी। लडक़े के सामने उसने एक ही शर्त रखी।वह शहर कभी नहीं छोडेग़ी। उसे पता था कि मैं जीवन भर इसी शहर में रहने वाला हूं।

शादी के बाद मां को वह अपने साथ अपने नए घर ले गई थी। मैं उसके नए घर में कभी नहीं गया था। उसने बुलाया भी नहीं। मैं ने उसे शादी के बाद, कई महीनों तक नहीं देखा।

हम अपने जीवन अलग - अलग तरीकों से जी रहे थे।

मुझे नहीं पता दुख का उत्स कहां होता है? कहां से जन्मता है वह और कैसे तिरोहित हो जाता है? उसकी सत्ता, उसकी व्याप्ति की परिधि भी मुझे नहीं मालूम। पर सर्दियों की उस दोपहर को एक नन्हें से धूप के टुकडे से मेरा वह दुख जन्मा था। निस्तब्ध, निर्मल, दीप्तिमान।

मैं छत पर था। मेरे पंजों के पास धूप का एक टुकडा था। सूप की शक्ल का। छत के एक कोने में कपडे सूख रहे थे। छत पर पौधे थे चिडियां थीं अन्न के दाने थेरुका हुआ पानी था।मेरी दृष्टि की परिधि में पूरा आकाश था। नीला - चमकदार। उसके नीचे धूप का सुनहरापन था। हल्का - हल्का कांपता आंच देता हुआ। उस सुनहरेपन के पार मिल की ठण्डी चिमनी थी चर्च की मीनार थी कोतवाली की घडी थी पुरानी इमारतें थीं। उनकी विशाल छतें, सौ साल पुरानी दीवारेंनक्काशीदार खिडक़ियों के झरोखे थे उभरे पत्थरों पर लिखे नाम थे। उससे भी पुराने पेड थे उनकी

शाखें थीं। खामोशी का अनन्त विस्तार था। सृष्टि की अपरिमेय सत्ता का स्पर्श था और उसमें एक नन्हीं सी नाव सा तैरता मेरा अस्तित्व था।

उस पूरी संरचना में मैं एकाकी थानितान्त एकाकी। मेरी दृष्टि इन सब को देख रही थी पर उस तरह नहीं जैसे हमेशा देखती थी । मैं एक द्रष्टा था। तभी उस दुख ने जन्म लिया। मेरे अपने साक्षात्कार से अपने अस्तित्व के स्पन्दन से अपनी आत्मा के स्पर्श से। समाधि निष्क्रमणपरित्याग निर्लिप्तता और गहन एकांत से बुने दुख ने। मेरा द्रष्टा विराट हो रहा था। मैं खुद को भी देख पा रहा था। हल्की सूखती सी खाल थकी आंखें निरुत्साहित चेहरा शिथिल शिराएं सुप्त संज्ञाएं एक पुराना अप्रासंगिक अनावश्यक जीवन। द्रष्टा होने का यह दुख आक्रान्त नहीं कर रहा था। इसमें पीडा नहीं थी यातना नहीं थी। इससे मुक्त होने की छटपटाहट भी नहीं थी। उसे स्वयं तक आने देने का, स्वयं को आच्छादित कर लेने का सुख था। उसी क्षण बिलकुल उसी क्षण मुझे उसकी याद आई। उसकी अलौकिक काया की। एक भयानक तडप के साथ। मुझे छीलती हुई, अग्निपुंज की तरह दहकाती हुई। मुझे लगा कि इस पूरी सृष्टि पूरी प्रकृति में इस धूप छत के एकान्त, आत्मनिर्वासन असहायता में, मुझे उसकी देह की जरूरत है। बहुत जरूरत है। उसी क्षण मुझे एक नया बोध हुआ। गहरे दुख में स्त्री देह एक शरण है। चूल्हे की आंच में जैसे कोई कच्ची चीज परिपक्व होती हैउसी तरह पुरुष के क्षत - विक्षत, खंडित अस्तित्व को वह देह संभालती है धीरे - धीरे अपनी आंच में फिर से पका कर जीवन देती है। स्त्री देह कितनी ही बार, चुपचाप, कितनी ही तरह से पुरुष को जीवन देती है, पुरुष को नहीं पता होता।

मैं नीचे उतर कर आया। मेरे पास उसका फोन नम्बर था। इस बीच बहुत लम्बा समय बीत गया था, मुझे उसे देखे हुए या उससे बात किये हुए। कुछ देर घंटी बजने के बाद उसीने फोन उठाया।
"कैसी हो तुम?"
" तुम? "
" मैं ठीक हूं। आना चाहता हूं।" मैं ने कहा।
वह एक क्षण चुप रही फिर बोली -
" क्या होगया?"
" कुछ नहीं।"
" फिर?"
" बस चाहता हूं।"
" कब?"
" अभी, इसी समय।"

वह फिर कुछ क्षण चुप रही फिर बोली -
" रुको मैं देख लूं जरा।" उसने फोन रख दिया। कुछ देर बाद वह वापस आई।
" तुम्हें यह घर मालूम है?"
" हां और सब कहां हैं?"
" मां पीछे आंगन में लेटी है।"
" और?"
" वह बाहर है उसे रात को आना है।"

" मैं आ रहा हूं।"
मैं ने फोन रख दिया।

मैं उसके घर गया। पहली बार। दो सीढियां चढने के बाद पीछे तक फैला हुआ, दोपहर का सन्नाटा था। इतना कि बाहर हवा में उडते पत्तों के दौडने की आवाज आ रही थी।

उसी ने दरवाजा खोला। एक क्षण मुझे देखा फिर दरवाजे से हट गई। मैं अन्दर आया।

कमरे में अंधेरा था। ऊपर के रोशनदान से एक चमक आ रही थी। वह ऊपर ही ऊपर थी। उसके नीचे अंधेरा था। वह मुझे और अन्दर के कमरे में ले गई। उसके सोने के कमरे के पहले का कमरा। छोटा सा एक हिस्सा था। फर्श पर बैठने का इंतजाम था। गद्दा कालीन कुशन कोने में लैम्प जल रहा था। उसी का प्रकाश था।

" बैठो।" उसने ईशारा किया।
मैं सहारे से बैठ गया। वह भी पास बैठ गई।
" कुछ लोगे?"
" नहीं।"
" क्या हो गया?"
" क्यों?"
" बस यूं ही इस तरह अचानक।"

मैं ने उसे ध्यान से देखा। उसका चेहरा थोडा फूल गया था। खाल की चमक थोडी क़म हो गई थी। देह थोडी भारी हो गई थी।
" कोई आएगा तो नहीं? " मैं ने पूछा।
उसने मुझे एक बार देखा।
" नहीं।"
" बन्द कर दो।" मैं ने लैम्प की तरफ इशारा किया। वह उठी। उसने लैम्प बुझा दिया। मेरे पास फिर आकर बैठ गई वह। मैं ने उसकी वही नन्हीं हथेली अपने पंजों में दबा ली। उसे खींचा मैं ने। उसका चेहरा मेरे बिलकुल पास आ गया।

" उसी गुफा में चलें।" मैं उसके कान में फुसफुसाया। वह कुछ नहीं बोली। सर उठाया उसने। मेरी आंखों में देखा। उस अंधेरे में भी मैं साफ देख रहा था। उसकी आत्मा उस रात की तरह फिर उसकी आंखों में थी। मेरी कालीन के एक कोने पर तनी बैठी थी।

इसके बाद छह साल बीत गये। वह मुझे बाजार में मिली।

उसके साथ एक छोटा बच्चा था। वह दुबली हो गयी थी। चेहरा निस्तेज हो रहा था। उसने बताया कि मां की मृत्यु हो गयी। वह अकसर बाहर रहता है।

" यह कब हुआ? " मैं ने बच्चे की तरफ ईशारा किया।
" देख सकते हो।" वह धीरे से हंसी। उसकी हंसी के साथ तीखी गंध फैली।
" तुमने शराब पी है? " मैं ने हैरानी से पूछा।
" थोडी सीडॉक्टर से पूछ कर।" उसे सांस लेने में भी दिक्कत हो रही थी। वह हांफ रही थी।
" रोज पीती हो?"
" हां।"
" पूरा दिन?"
" नहीं।"
" क्यों?"
उसने सर घुमा लिया।
" चलूंगी।" उसने बच्चे का हाथ पकड लिया।
" तुम ठीक तो हो?" चलने से पहले उसने पूछा। मैं कुछ नहीं बोला। उसने एक बार मुझे देखा फिर बच्चे का हाथ पकड क़र चली गयी।

तीन साल बाद वह फिर मिली। दूसरे शहर की एक शादी में।

इन तीन सालों में उसने बस एक बार मुझे फोन किया था। अपने बच्चे के जन्मदिन पर बुलाने के लिये। मैं नहीं गया था।

उस शादी से हम साथ लौटे थे। उन दिनों रेल में दो बर्थ वाला फर्स्ट क्लास का कूपे होता था। मैं ने घूस देकर एक कूपे रिजर्व करा लिया था। स्टेशन पर ही मुझे वह मिल गई थी।उसका बच्चा अब बडा हो गया था। बोलने लगा था। वह मजबूती से उसका हाथ पकडे थी। हमारा सफर पूरी रात का था।

कूपे में हम बैठ गये। कुछ ही देर में गाडी ने स्टेशन छोड दिया। मैं ने कूपे अन्दर से बन्द कर लिया।

" तुमने कुछ खाया? " मैं ने पूछा।
" हाँ" उसने बच्चे को कपडे से ढकते हुए कहा।

खिडक़ी से तेज हवा आ रही थी। अक्टूबर के ही दिन थे। रात हो चुकी थी। उसने बर्थ के सबसे किनारे पर बच्चे को लिटा दिया। उसके बाद वह बैठी थी। फिर मैं था।बच्चा हाथ पैर चला रहा था। वह उसे थपक रही थी उससे बात कर रही थी।

"यह कब सोता है?" मैं ने पूछा।
" अभी सो जायेगा।"

मैं ने खिडक़ी के बाहर देखा। खेतों के पार चांद निकलना शुरु हो गया था। लाल बिलकुल। पूरा एक वृत्त ऐसा चांद शहरों में नहीं दिखता था।
" देखो।" मैं ने उसका कंधा हिलाया। उसने सर घुमा कर चांद को देखा। देर तक देखती रही वह, उसकी देह मेरी देह को छू रही थी। मैं देख रहा था। बहुत तेजी से उसकी देह गल रही थी। उसकी काया का आलोक नष्ट हो चुका था।

" तुम ठीक नहीं हो।" मैं ने कहा।
" क्यों? "
" बहुत कमजोर हो चुकी हो।"
" हां, बहुत बोझ है मां के बाद कोई नहीं है वह हमेशा बाहर रहता है बच्चा भी बडा हो रहा है।"
" इन बातों से शरीर ऐसा नहीं होता। तुम बहुत ज्यादा शराब पी रही हो।"
" हां वह भी है।" वह धीरे से हंसी।

एक हाथ से वह लगातार बच्चे को थपक रही थी। उसका दूसरा हाथ मैं ने अपनी हथेली में दबा लिया। उसकी छोटी मुलायम उंगलियों की हड्डियां उभर आईं थीं। मैं उन्हें सहलाता रहा।
" तुम ऐसा क्यों करती हो?" मैं ने धीरे से पूछा। वह कुछ नहीं बोली।
" हम अपना जीवन बहुत दूसरी तरह से जी सकते थे न।" कुछ देर बाद वह बोली।
" पर तुम डर गए थे उस रात तभी तुमने वह दर्शन गढा था।" मैं ने सर घुमा कर देखा उसका चेहरा साफ नहीं था। कूपे के अन्दर पूरा अंधेरा था। चांद थोडा ऊपर आ गया था।उसकी लाली खत्म हो गयी थी। उसकी रोशनी कूपे के एक हिस्से में थी। उसी में चेहरा दिख रहा था। माथे की सिलवटें उसके कानों पर गिरे बाल उदास थकी - थकी आंखें।

" उतना और उस तरह मैं जीवन में कभी नहीं रोई जितना उस रात। मां के मरने पर भी नहीं। तुम्हारे जाने के बाद मैं ने पूरे कपडे पहने, बाहर निकली और खाली सडक़ों पर घूमती रही। बुरी तरह रोती हुई। मेरे आंसू बह रहे थे। मैं सडक़ों पर बदहवास तेज - तेज चल रही थी। हवा में कपडे उड रहे थे बाल बिखर गये थे।चांदनी ओस की ठंडक और घरों की दीवारों के नीचे फैले अंधेरे के गुच्छे। कोई मुझे उस वक्त देखता तो एक आवारा, बदचलन लडक़ी समझता या फिर शायद पागल। मुझे याद है उस रात मैं दोनों थी। मुझे याद है ठीक उसी क्षण ऊपर से एक जहाज गुजरा, उसी क्षण एक कुत्ता मुंह उठा कर रोया, उसी क्षण मेरा पांव जले हुए राख पर पडा और उसी क्षण मैं ने तय किया कि शादी कर लूंगी। उसी क्षण मैं ने यह तय किया कि आत्मा को इससे अलग रखूंगी जैसा तुमने बताया था। यह संशय का दुविधा का निर्णय था अच्छा है पहले ही इसे अलग कर दो। उस रात मैं जब घर लौटी तो सब कुछ मेरे सामने साफ था। सारे सत्य प्रकाशित थे। गुफा के आत्मा के मां के भविष्य के।" वह सांस लेकर चुप हो गयी। उसकी उंगलियां मेरी उंगलियों में कांप रही थीं। हल्की सी पसीज गई थीं।

मैं खिडक़ी के बाहर देखने लगा। खिडक़ी के बाहर सब सफेदी में डूब चुका था। झोंपडे मवेशी खेत कुंए सूखी नहर थरथराते पुल। मैं निर्निमेष बाहर देखता रहा।

जीवन मृत्यु प्रेमस्वप्न जय पराजय पूरी सृष्टि, पूरा इतिहास इन्हीं का है। सबकी अपनी - अपनी सत्ताएं हैं अर्थ है व्याप्ति है। किसको जीवन में कितना क्या मिलता है और क्यों हन यह गहरा रहस्य है। अपरिभाषेयअविविेचित। मेरा भय और उसका सुख एक थे। उसकी आत्मा मेरी देह के सत्य एक थे। मेरे भय और उसके भय का तर्क, उसका सुख और उस सुख का तर्क एक ही परिधि में थे। मैं दोषी था या वह? यह हमारे बीच में फैला हुआ सृष्टि का वह निरंतर सनातन रहस्य जो दो आत्माओं को एक दूसरे में समाहित नहीं होने देता? यह क्यों होता है? क्यों इतना छोटा - सा जीवन सरल और परिभायेय नहीं होता? एक क्षण का शतांश भी क्यों हजारों लोग अलग - अलग तरह से जीते हैं? देह और आत्मा के सूत्र क्यों गणित के सूत्रों की तरह सिध्द और ज्ञात नहीं होते?

उसका दूसरा हाथ मेरी हथेली पर आया। मैं ने सर घुमा कर देखा। उसने बच्चे को थपकना बन्द कर दिया था। " सो गया।" वह धीरे से बोली। उसकी पसीजती उंगलियां मेरी उंगलियों से फिसल गईं। वह बर्थ से उठ गई। उसने बच्चे को बर्थ के बिलकुल किनारे लिटा दिया। बर्थ पर पूरी जगह बन गई थी।

वह वापस नहीं बैठी। मेरे सामने आकर खडी हो गयी। उसने हाथ बढा कर मेरा चेहरा अपनी हथेलियों में दबाया। मेरे कानों को सहलाया। मेरे सिर को फिर अपने सीने में दुबका लिया।मैं देर तक उसी तरह दुबका रहा। मेरे कानों पर दो गर्म बूंद गिरीं। उसने मेरा सर अपने से अलग किया। उसे ऊपर उठा कर मेरी आंखों में देखा।

" उसी गुफा में चलें? " उसने पूछा। उसका चेहरा अभी अंधेरे में था। उसकी आंखों का गीलापन दिख रहा था। मैं ने उसे अपनी तरफ खींच लिया।

बर्थ पर वह लेटी तो पूरी चांदनी उसके चेहरे पर थी। मैं ने देखा। उसकी आत्मा वहीं थी जहां रहती थी। मैं ने एक क्षण के लिये खिडक़ी से बाहर देखा।

मेरी आत्मा चांद पर बैठी तालियां बजा रही थी।

दो साल बाद।

कब्रिस्तान के पीछे पुरातत्व विभाग की छोटी सी पुरानी इमारत थी। मैंउन दिनों वहीं बैठ रहा था। कुछ पुराने सिक्के किसी खुदाई में मिले थे। उनकी लिपि पढनी थी।

यह शहर से बाहर का हिस्सा था। शांत और खुला हुआ। मेरी मेज क़े सामने खिडक़ी थी। वहां से कब्रिस्तान का एक साफ हिस्सा दिखता था। पुराने टूटे पत्थर भूले हुए समाधि लेख कब्रों पर उगी जंगली घास सूखे पत्ते जंग लगा लोहे का फाटक। उस कब्रिस्तान के साथ - साथ एक सडक़ जाती थी। यह सडक़ दोनों तरफ से ढाल से आकर उंचाई पर मिलती थी।मेरे सामने वाली सडक़ से जो भी आता था, हिस्सों में दिखना शुरु होता था, पहले बाल फिर माथा फिर चेहरा, फिर पूरा शरीर।

सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि में कुछ लिखा था। बहुत देर तक अक्षर मिलाने के बाद मैं थक गया था। कुर्सी की पुश्त से टिका हुआ मैं सामने की खिडक़ी से आते हुए लोगों को देख रहा था। शाम का समय था, सडक़ खाली थी। मेरी सहयोगी लडक़ी कॉफी बनाने अन्दर गई थी।

तभी मैं ने उसे देखा। सडक़ की चढाई से वह धीरे - धीरे दिखना शुरु हुई। पहले बाल फिर माथा फिर गला, फिर धीरे - धीरे आती हुई थकी देह। वह मुझे अब पूरी तरह दिख रही थी।वह अब सडक़ पर आ गई थी। एक घर की दीवार के साथ हाथ टेक कर खडी हो गई। वह गहरी सांसे ले रही थी। उसकी देह कांप रही थी। उसक हाथ खाली थे। वह कब्रिस्तान के पीछे से निकली थी। शायद किसी की कब्र पर आई थी। इतने दिनों में उसकी देह और पतली हो गई थी।

स्तब्ध संज्ञाशून्य मैं उसे देखता रहा। कुछ देर इसी तरह खडी रह कर उसने सांसे अंदर भरीं। दीवार से हाथ हटाया और फिर धीरे - धीरे ढाल पर उतरती हुई ओझल हो गयी।

एक साल बाद मुझे पता चला कि वह दस दिन अस्पताल में रह कर घर लौटी है। मैं ने उसे फोन किया। उसी ने फोन उठाया।

" क्या हुआ था? " मैं ने पूछा।
" कुछ नहीं बस यूं ही।"
" यूं ही कोई अस्पताल में भरती नहीं होता है। अब ठीक हो?"
" हां।"
" कौन है घर में? "
" कोई नहीं है वह बाहर है।"
" मैं आ रहा हूँ।"
वह कुछ नहीं बोली। उसने फोन रख दिया।

मैं दूसरी बार उसके घर गया। दरवाजा अन्दर से खुला था। मैं ने पल्ले धकेले। उसे मेरी आहट सुनाई दी या कि शायद मैं दिखा उसे।
" बन्द करके आ जाओ।"
एक कमरे के अन्दर से उसकी आवाज आई। मैं ने दरवाजा बन्द कर दिया। अन्दर एक दूसरा कमरा था। वह उसमें थी। पलंग पर लेटी हुई। कमरे की खिडक़ियों की जाली से थोडी धूप आ रही थी। उसी की रोशनी से कमरा भरा था।

वह पलंग पर थी। तकिए पर उसका सर था। बाल खुले थे। गले तक वह कम्बल से खुद को ढके हुए थी। मैं पास की कुर्सी पर बैठ गया। उसने पलंग पर हाथ थपथपाया। मैं उठ कर सिरहाने पलंग पर बैठ गया।

" क्या हुआ था? " मैं ने पूछा।
" खून की खराबी थी दस दिन अस्पताल में रहना पडा।"
" क्यों हुआ? "
वह कुछ नहीं बोली।
" शराब से? "
सर घुमा लिया उसने।
" अब? "
" अब नहीं छोड दी है।" उसने सर घुमा कर देखा मुझे। " दवाएं चलेंगी, मरूंगी नहीं अभी।"
" इस हालत में अकेली क्यों हो? "
" काम वाली अभी गई है। तुम आ रहे थे इसलिये भेज दिया।" बोलने में वह थक रही थी।

बहुत कमजोर हो गई थी। पूरी देह सिकुड ग़ई थी। उसने कम्बल के नीचे से अपना एक हाथ बाहर निकाला। मेरी हथेली पर रखा। मैं ने उसकी हथेली देखी, पूरी झुर्रियों से भरी हुई।खाल चटक गई थी। उंगलियों की हड्डी से अलग पडी थी।

" कैसे हो? " उसने धीरे से पूछा। उसकी दृष्टि में स्नेह था।
" ठीक हूँ।"

" तुम्हारे कुछ बाल सफेद हो गए।"
" हाँ उमर हो रही है।"
" हम बहुत जीवन जी लिये शायद? "
" हाँ।"
" उसे समझते हुए, स्वीकार करते हुए। अपने - अपने सुखों के साथ एक दूसरे को सुख देते हुए।"
मैं कुछ नहीं बोला, उसे देखता रहा।
" मैं ने तुम्हें सुख दिया न? " उसने अचानक पूछा।
" हाँ।"
" मैं कभी पीछे नहीं हटी। जितनी भी देर जब भी तुमने चाहा। बिना संसय के अपनी आत्मा के साथ। हर बार वह मेरी आंखों में थी वह सुख देने में थी तुमने उसे देखा होगा।"
" हाँ क्यों किया ऐसा?"
" पता नहीं शायद पिछले जन्म का कुछ हो शायद प्रेम ऐसा ही होता हो।"

मैं उसे देख रहा था। उसकी हथेली मेरी हथेली पर थी।
"क्या देख रहे हो?"उसने धीरे से पूछा।
" तुम्हारा हाल।"
उसने कम्बल गले से हटा दिया।
" देखो ठीक से।"
कम्बल के नीचे एक कपडा था बदन से खिसका हुआ।

वह एक डरावनी बुढिया में बदल चुकी थी। उसकी छातियां बिलकुल पिचक गईं थीं। जांघ और नितम्बों का मांस लटक गया था। उसके चेहरे से दुर्गन्ध आ रही थी। इस काया का अद्‌वितीय आलोक मैं ने कई बार देखा था। काया का ऐसा क्षरण भी पहली बार देखा था।

उसने मेरी हथेली पकड क़र मुझे खींचा। मैं उसकी देह पर झुक गया। वह मेरी हथेली पर उंगलियां फेरती रही। उसकी निर्वसन देह मेरे नीचे दबी थी। हम देर तक इसी तरह पडे रहे।वह गहरी सांसे ले रही थी। उसके नथुनों से आवाज आ रही थी। पिचकी छाती ऊपर नीचे हो रही थी। उसने अपनी हथेली मेरी देह के दूसरे हिस्से पर फेरी

" औरत पुरुष की इस लालसा को समझने में कभी गलती नहीं करती।"
मैं हैरान था कि उसकी इस अवस्था में इस घृणा पैदा करती देह के लिये भी मेरे अन्दर सचमुच लालसा जाग रही थी।

" कंबल ढक लो।" उसने कहा।
मैं ने कम्बल ऊपर खींच लिया। कंबल पूरा ढकने से पहले मैं ने देखा। उसकी आत्मा फिर उन निस्तेज आंखों में थी। मेरी खिडक़ी पर बैठी थी साक्षी थी ताली बजा रही थी।

कुछ क्षण बाद मैं उससे अलग हुआ। उसके अंगों में सूखापन था। आयु अवसाद या फिर मेरी हमेशा की अकुशलता के कारण। मैं पलंग से उतर गया।

" मुझे सहारा दो।" कुछ देर बाद वह भी पलंग से थोडा उठी। मैं ने उसे हाथ से पकड लिया। वह पलंग से नीचे उतर आई।

कमरे में गहरी नीरवता थी। उसके हांफने की आवाज साफ सुनाई दे रही थी। वह दीवार का सहारा लेकर खडी थी। झुकी हुई। घृणा पैदा करती हुई। कुछ देर वह मुझे देखती रही।

"आज फिर तुमने सुनी होगी? " वह धीरे से बोली।

" क्या? "

" हर बार की तरह नाटक खत्म होने पर अपनी दर्शक आत्मा की तालियों की आवाज? "

मैं चुपचाप उसे देखता रहा। हांफती हुई वह बोल रही थी -

" मैं ने उसे हर बार देखा है। उसकी तालियां सुनी हैं। मुंडेर पर कालीन पर चांद पर और आज खिडक़ी पर। मैं हर बार इंतजार करती रही कि शायद इस बार ऐसा नहीं हो। पर आज भी जब सबका अंत हो रहा है मृत्यु है समाप्ति है पूरा जीवन जी चुके हम तब भी वह तुम्हारे अन्दर नहीं थी। उसका चेहरा तेजी से पीला पड रहा था।

मैं कुछ नहीं बोला। सर झुका कर चुपचाप कपडे पहनने लगा।अचानक मैं लडख़डाया और चौखट से टकरा गया। उसने मुझे लात मारी थी।

मैं ने घूम कर देखा। वह हंस रही थी। उसकी निस्तेज आंखों में वही पुराना आलोक था। उसकी आत्मा हर बार की तरह उसकी आंखों में थी। उस विलक्षण रोशनी के निर्झर में नहाई हुई।

मैं ने एक क्षण उसे देखा, फिर चुपचाप बाहर निकल आया।

शीर्ष पर जाएँ